• कविताएं...

पराए हो गए

परदेस गए
पराए हो गए
यों सहमे खड़े हो
आओ, चले आओ!
देखो कुछ नहीं बदला
यह घर, ये दीवारें
तुलसी का चौरा
कोने में लटका
घोंसले का खंडहर,
अंदर अम्मां
सुमरिनी, खड़ाऊं
फूल चढ़ी
वह कोना तुम्हारा
उसी तरह।
बाहर नीम तले
भोलू चा वाला
रिक्शा स्टैंड वही टुटहा
मक्खियां बेखौफ
पुरानेपन से।
हां, उस कोठरी में
खेलते थे लुकाछिपी
पिटे और लड़े
अब बंद है बचपन-
आओ खोलें!
अब छोड़ो भी
तुम्हीं कौन वही रह गए हो
चले ही आओ
मिलकर फाड़ते रहें
पुरानी चिट्ठियां
गीलापन बिना पोंछे हुए

■ देवेंद्र कुमार

फ़ासला यूं तो बस मकां भर था

फ़ासला यूं तो बस मकां भर था
लेकिन अपना सफ़र जहां भर था
धूप दिल में फ़क़त गुमां भर थी
अब्र आंखों में आसमां भर था
आंख में इश्क़ और बदन भर चाह
शुक्र लब भर गिला ज़बां भर था
क्या मिला जुज़ सुकूत-ए-बे-पायां
शोर सीने में कारवां भर था
मुज़्दा-ए-वस्ल था बस इक फ़िक़रा
ख़ौफ़ -ए-आदा तो दास्तां भर था

■ नज़ीर आज़ाद

• कहानी/—पद्मा सचदेव

हमवतन

कोलाबा जाने वाले बस स्टैंड पर मैं अकेली खड़ी थी। वर्ली सी फेस के सामने बंबई का समुद्र हाथ-मुँह धोकर सुबह के पूरी तरह खिलने का इंतजार कर रहा था। उसकी छाती पर अठखेलियाँ करते समुद्र-पाखी लहरों के साथ ऊपर-नीचे जा रहे थे। दूर तक फैले समुद्र पर जहाँ मटियाला सा नजर आता था, वहाँ खड़े दो-तीन जहाज चित्र की तरह मढ़े लग रहे थे। तभी सुबह के साथ अठखेलियाँ करती हवा ने मेरे कान में आकर कहा, 'कोलाबा जानेवाली बस आ रही है...।'

बस घूँ.... करके झटके के साथ आकर रुकी। मैं बस पर चढ़कर बिना रुके सीढ़ियों से ऊपर की मंजिल पर दौड़कर चढ़ गई और आगे की सीट पर बैठ गई। समुद्र की लहरों ने मुझे पकड़ना चाहा। ज्योंही खूब ऊँची छलाँग उन्होंने लगाई तो मैं पूरी उसमें भीग गई। बस दौड़ने लगी तो मुझे लगा, मैं हिंडोले पर झूल रही हूँ। बस बाएँ मुड़ती तो मैं पूरी-की-पूरी पीतल की गगरी की तरह बाएँ झुक जाती और दाएँ मुड़ती तो दाएँ लुढ़क जाती। सीट की लोहे की डंडी को जोर से थामे हाजी अली के आगे से निकली तो मैंने हाजी अली पीर को झुककर आदाब करके सैनिकों की लंबी उम्र की भीख माँगी। हाजी अली का सुंदर चौराहा पार करके मैं पेडर रोड में दाखिल हुई तो मुझे होश आया और 1971 की जंग में जख्मी हुए जवानों की सूरतें आँखों में घूमने लगीं।

भारत-पाक में छिड़ा युद्ध खत्म हो गया था। बच गई थीं कुछ साँसें, जिन्हें जंग के मैदान से उठाकर लाना पड़ा था। मुझे खयाल आया, इसी तरह कई जख्मी पाकिस्तान में भी होंगे। मैं कोलाबा के मिलिटरी अस्पताल में आए घायल सैनिकों को देखने जाती थी। वहाँ के सभी डॉक्टर व नर्स मुझे जानते थे। वही बता देते थे, आज इस मरीज के पास जाकर बैठो, आज उस सिपाही से बातें करो। मैं उनकी दवाई का भी पूरा ध्यान रखती और उनसे बातें करती रहती। बड़ा सुकून मिलता। यूँ लगता, इस जंग में मेरा भी योगदान है। मैं इनकी सेवा करके देश की सेवा कर रही हूँ। रास्ते में मैने अपनी हैसियत के मुताबिक एक दर्जन केले, एक दर्जन संतरे और कुछ गुलाब के फूल खरीदे। सीढ़ियाँ चढ़कर मैं अस्पताल के पहले माले पर पहुँची, तो व्हील चेयर पर उकडूँ बैठा एक सिपाही आँखों पर हाथ रखे कराह रहा था, 'हाये माये, के कराँ (हे माँ, क्या करूँ?)'

मैं चौंकी, यह डोगरा जवान है। मैंने वहीं से व्हील चेयर पर हाथ रखा और खिदमतगार की तरफ मुसकराकर देखा और साथ-साथ चल पड़ी। कमरे में जब उसे बिस्तर पर लिटाया गया तो फिर वह एक बार बोला, 'हाये माये, बड़ी पीड़ ए (हे माँ, बड़ी पीड़ा है।)।'

मेरा कलेजा बाहर आ गया। उसकी आवाज में पता नहीं कितने दर्द भरे थे। 'माँ' कहते वक्त जब उसके होंठ मिले तो उसके सूजे हुए होंठों पर खून का एक कतरा निकल आया। डॉक्टर ने आकर उसे एक इंजेक्शन दिया। उसका मुँह-सिर ढका ही था। मैंने उसके कंधे पर हाथ रखा और धीरे, बहुत धीरे जैसे माँ अपने सोए बच्चे की बगल में जाकर लेटती है, डोगरी की लोरी गानी शुरू कर दी-

'तूँ मल्ला तूँ लोक भन्नन, ठीकरियाँ बदाम भन्ने तूँ,
तूं मल्ला तूं लोक ब्हौन, मंडियाँ नेयाँ करें तूँ।'

(मेरे बच्चे, लोग ठीकरे तोड़ें तो तू बादाम तोड़ें, लोग

अचानक कंधे पर एक हाथ का कसाव मुझे बाहरी दुनिया में ले आया। मैंने अपनी चुनरी से आँसू पोंछे और घूमकर देखा। सिपाही की उम्र का ही एक डॉक्टर सफेद कोट पर झूलता स्टेथेस्कोप हाथ में थामे बड़ी हमदर्दी से मुझे देख रहा था।

उस वार्ड में छह बीमार थे। सबके बिस्तर के आगे परदे लगे थे। उनके भीतर युद्ध की भयावहता का नंगा रूप खुला पड़ा था। डॉक्टर ने मुझे पीछे आने का इशारा किया...

अदालत में बैठें तो तू उनका न्याय करे। यही मेरो दुआ है।)

उसकी साँस हल्की होती गई। उसने बड़ी कोशिश करके एक आँख जरा सी खोली और इत्मीनान से मुझे देखा। उसके गाल मुसकराहट में खिंचे। उसके होंठों पर खून का कतरा एक विद्रोही की तरह आ निकला। उसने गरदन को जरा सी जुंबिश देकर कहा, 'गाओ, और गाओ।' लोरी का अंतरा अभी अधर में ही फड़फड़ा रहा था कि वह तृप्त बच्चे की तरह सो गया।

उसके सोते ही अपने दोनों हाथों से मुँह छुपाकर मैंने अपने आँसू बह जाने दिए। पता नहीं यह कब तक चला। बेआवाज आँसू निकालने में बड़ी तकलीफ होती है। आवाज अंदर ही घुटकर फड़फड़ाती रहती है। खारा पानी निकलने के बाद भी कुछ भीतर रह जाता है, जो बादलों में बिजली की तरह मुखर होता रहता है।

अचानक कंधे पर एक हाथ का कसाव मुझे बाहरी दुनिया में ले आया। मैंने अपनी चुनरी से आँसू पोंछे और घूमकर देखा। सिपाही की उम्र का ही एक डॉक्टर सफेद कोट पर झूलता स्टेथेस्कोप हाथ में थामे बड़ी हमदर्दी से मुझे देख रहा था। उस वार्ड में छह बीमार थे। सबके बिस्तर के आगे परदे लगे थे। उनके भीतर युद्ध की भयावहता का नंगा रूप खुला पड़ा था। डॉक्टर ने मुझे पीछे आने का इशारा किया। बाहर कॉरीडोर में आते ही उसने बहुत धीमी आवाज में पूछा, 'आपको कैसे पता चला?'

मैं हैरान सी डॉक्टर को देखने लगी। शायद उसे अपनी गलती का अहसास हुआ। वह सवालिया निगाहों से मुझे देखने लगा। मैंने कहा, 'मैं रोज यहाँ मरीजों के पास आकर बैठती हूँ। यह डोगरी बोल रहा था, तो मैं इसके पीछे-पीछे चली गई। यह मेरा हमवतन है। इससे बड़ा कोई रिश्ता नहीं होता। इसे क्या हुआ है डॉक्टर साहब?'

वह वार्ड के अंत में खिड़की से झाँकते समुद्र को देखते हुए बोला, 'इसके दिमाग में छर्रे घुस गए हैं। यह बम फटने के स्थान से अपने साथी को उठाकर लाया था। हम कुछ नहीं कर सकते। बस, जब तक है, तब तक इसकी देखभाल कर सकते हैं। इसकी तकलीफ किसी से देखी नहीं जाती। जब यह चिल्लाता है, तब दीवारें भी सहमकर काँपने लगती हैं।'

मैंने पूछा, 'इसके घरवालों को तार दे दिया होगा? जम्मू से यहाँ आने में भी दो दिन लगेंगे।'

डॉक्टर चुपचाप सोचने लगा। फिर बोला, 'पर आप आती रहिए। मरने से पहले किसी अपने को देखकर इसे यकीनन खुशी होगी।'

मैंने पूछा, 'डॉक्टर साहब, इसे कब तक होश आएगा?'

डॉक्टर मायूस होकर बोला, 'दर्द पर मुनहसिर है। चार-पाँच घंटे तक आ सकता है।'

चार घंटे बाद जब मैं लौटी तो वह सूप पी रहा था। मैं आकर उसकी चारपाई के पास रखे स्टूल पर बैठ गई। मैंने पूछा, 'हुन ठीक ओ न?'

उसने कहा, 'हाँ, इस वक्त तो ठीक हूँ।' सूप पीते वक्त मुँह खोलने में उसे तकलीफ हो रही थी, पर अब उसके होंठ पहले से कम सूजे हुए थे। उसने लड़खड़ाती आवाज में पूछा, 'इत्थें कीयाँ आइयाँ?'

मैंने कहा, 'मैं यहाँ रोज घायल सिपाहियों को देखने आती हूँ। नर्सें बता देती हैं, किसके पास बैठूँ। किसी-किसी की सेवा करने का मौका मिल जाता है। कई लड़कियाँ आती हैं। सिपाहियों से बातें करके लगता है, देश की रक्षा में हमारा भी योगदान है और आपको तो पता ही होगा, हमारे सैकड़ों-हजारों लोकगीत सिपाहियों पर ही रचे गए हैं। मुझे अपने सिपाही बहुत अच्छे लगते हैं।'

उसने खुश होकर कहा, 'आपको सिपाहियों के लोकगीत आते हैं?'

मैंने कहा, 'हाँ, हर डोगरी औरत को आते हैं।'

वह आग्रह से बोला, 'मेरे लिए गाइए न!'

मैंने अपना गला धीरे से साफ किया और ऐसे गुनगुनाने लगी, जिसे सिर्फ वह सुन सके-

'बोल मेरिये जिंदड़िये
दूर सपाई कीयाँ रोहंदे न'

(मेरी जान, बताओ सिपाही दूर कैसे रहते हैं?)

उसे अपनी भाषा में गीत सुनकर सुकून मिल रहा था, जैसे मादरी जबान उसका दर्द पी रही थी। आसपास मरघट जैसी खामोशी थी। थोड़ी देर बाद मैं चुप हो गई। मैंने धीरे से पूछा, 'आप कहाँ के हैं?'

उसने कहा, 'चनैनी का हूँ। जम्मू से कश्मीर जाते हुए दाई तरफ सफेद-सफेद महल है न, वहीं एक नदी बहती है। वहीं बिजलीघर भी है। चनैनी के राजा की माँ हमारे ही गाँव की बेटी थी। मैं कई बार राजा के महल में भी गया हूँ।' राजा की बात करते-करते उसके चेहरे पर बड़प्पन की एक परछाई उजलाने लगी। मुझे लगा, यह खुद भी राजा है। **-जारी**

• शायरी...

चिन्ता है, अब किसे सोचने की फ़ुरसत है?
जिनके पैरों तले ज़मीन नहीं,
उनके सिर पर उसूल की छत है।
रेशमी शब्दजाल का पर्याय,
हर समय, हर जगह सियासत है।
वक्त के डाकिये के हाथों में,
फिर नए इंक़लाब का ख़त है।

शेरजंग गर्ग

◆ ◆ ◆

जब से वो परदेस गया है शहर की रौनक रूठ गई
अब तो अपने घर के बंद दरीचे अच्छे लगते हैं
कल उस रूठे रूठे यार को , देखा तो महसूस हुआ
मोहसिन उजले जिस्म पे मैले कपड़े अच्छे लगते हैं

-मोहसिन नक़वी

◆ ◆ ◆

यादों के मह ओ महर तमन्नाओं के बादल
क्या कफछ न वो सौग़ात सर-ए-दश्त-ए-वफ़ा दे
याद आती है उस हुस्न की यूं 'जाफ़री' जैसे
तन्हाई के ग़ारों से कोई खुद को सदा दे

-फ़ुज़ैल जाफ़री

• लहू रंग घटा छाई...

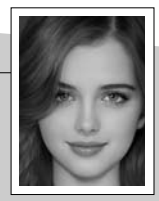

ग़ज़लों में अब वो रंग न रानाई रह गई
कुछ रह गई तो क़ाफ़िया-पैमाई रह गई
लफ़्ज़ों का ये हिसार बुलंदी न छू सका
यूं भी मिरे ख्याल की गहराई रह गई
क्या सोचिए कि रिश्ता-ए-दीवार क्या हुआ
धूपों से अब जो मारका-आराई रह गई
कब जाने साथ छोड़ दें दिल की ये धड़कनें
हर वक्त सोचती यही तन्हाई रह गई
अपने ही फ़न की आग में जलते रहे 'शमीम'
होंटों पे सब के हौसला-अफ़ज़ाई रह गई। *-फ़ारूक़ शमीम*